क्या न्यायपालिका संस्थागत संकट के दौर से गुज़र रही है?

drishtiias.com/hindi/printpdf/institutional-crisis-in-judiciary

संदर्भ

- संविधान निर्माताओं ने शासन के तीनों अंगों विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका को एक समान शक्तियाँ दी हैं। एक समान शक्तियाँ प्राप्त होने के बावज़ूद सुप्रीम कोर्ट (न्यायपालिका) को ही संविधान का सरंक्षक (guardian of the constitution) कहा गया है।
- हाल ही में सुप्रीम कोर्ट की दो खंडपीठों ने अलग-अलग निर्णय दिये हैं। हालाँकि बाद में इस मुद्दे पर आपसी सहमति बना ली गई, फिर भी यह कहा जा रहा है कि सुप्रीम कोर्ट में सब कुछ सही नहीं है और यह संस्थागत संकट के दौर से गुज़र रहा है।
- आज वाद-प्रतिवाद-संवाद में हम यह चर्चा करेंगे कि क्या सच में न्यायपालिका संस्थागत संकट के दौर से गुज़र रही है? यदि हाँ तो इसके कारण क्या हैं?
- इस बहस का आधार यह है कि न्यायपालिका और कार्यपालिका में से कौन किसके कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप कर रहा है। यदि लोकतंत्र की तुलना क्रिकेट के मैदान से की जाए तो न्यायपालिका की भूमिका अम्पायर वाली है, जबकि कार्यपालिका हाथ में बैट-बॉल पकड़े खिलाड़ी की तरह है। अब अम्पायर खुद न तो बैटिंग कर सकता है और न ही खिलाड़ी स्वयं अम्पायर बन सकते हैं।

वाद

न्यायपालिका की स्वतंत्रता:

♦ स्वस्थ लोकतंत्र के लिये न्यायपालिका का स्वतंत्र रहकर कार्य करना अत्यंत ही आवश्यक है, लेकिन सरकार आज यह चाहती है कि न्यायपालिका अपनी सीमा में रहे।
♦ दरअसल जिस तरह से इंदिरा गांधी एक “कमिटेड जुडिशियरी” (committed judiciary) चाहती थी (यह कमिटमेंट यानी प्रतिबद्धता लोकतंत्र के हित में न होकर, विधायिका की राह आसान बनाने के संबंध में थी) ठीक उसी तरह आज न्यायपालिका पर भी दबाव बनाया जा रहा है।

के. वीरास्वामी बनाम भारत संघ मामला (K Veeraswami v Union of India)

हाल ही में सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा का नाम एक एफआईआर में आने की बात की गई है।
जबकि वर्ष 1991 के के. वीरास्वामी बनाम भारत संघ (K Veeraswami v Union of India) मामले में शीर्ष अदालत के निर्णय के अनुसार:

♦ भारत के मुख्य न्यायाधीश की लिखित अनुमति के बिना सुप्रीम कोर्ट के एक न्यायाधीश के खिलाफ कोई शिकायत नहीं की जा सकती है।
♦ वहीं सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ तब तक शिकायत दर्ज़ कराई जा सकती जब तक कि सरकार की अनुसंसा पर सुप्रीम कोर्ट का ही कोई जज मुहर नहीं लगा देता।

- हालाँकि यह साफ नहीं हो पाया कि एफआईआर में मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा का नाम है या नहीं। लेकिन यदि ऐसा कुछ है तो ज़ाहिर है कि सरकार न्यायपालिका पर दबाव बनाने का कार्य कर रही है।
- न्यायिक नियुक्तियों का संकट

न्यायपालिका में संस्थागत संकट का सबसे बड़ा उदाहरण है न्यायिक नियुक्तियों के संबंध में इसकी न सुना जाना है। हाल ही में कॉलेजियम द्वारा जारी एक सूची पर सरकार ने कोई एक्शन नहीं लिया।
आज तक ऐसा नहीं हुआ था कि कॉलेजियम ने नियुक्ति से संबंधित कोई सूची जारी की हो और सरकार ने इनकार कर दिया हो कि वह इन्हें नियुक्त नहीं करेगी।

जजों का पक्ष न सुना जाना

♦ किसी जज के व्यक्तित्व का विश्लेषण उसके द्वारा दिये गए निर्णयों एवं उसके द्वारा इनके पीछे दिये गए तर्कों के आधार पर करना चाहिये।
♦ दरअसल, आज हम मीडिया प्रधान युग में जी रहे हैं जहाँ वकील, मुअक्किल यहाँ तक कि आरोपी भी अनौपचारिक तरीके से अपनी बात रख सकता है, लेकिन जज को शायद ही कभी ऐसे अपना विचार रखने का मौका मिलता है।

प्रतिवाद

वर्तमान मामला

♦ विदित हो कि मेडिकल कॉलेजों को मान्यता देने के लिये जजों द्वारा कथित तौर पर रिश्वत लिये जाने के मामले को लेकर दायर याचिका पर जस्टिस जे. चेलामेश्वर और जस्टिस एस. अब्दुल नजीत की एक पीठ न अपने आदेश में कहा था कि याचिका पर शीर्ष अदालत के पाँच वरिष्ठतम जजों की संविधान पीठ को सुनवाई करनी चाहिये।
♦ हालाँकि, प्रधान न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पाँच सदस्यीय संविधान पीठ ने जस्टिस चेलामेश्वर की अध्यक्षता वाली पीठ का आदेश उलट दिया और कहा कि केवल मुख्य न्यायाधीश ही निर्णय ले सकता है कि कौन सी पीठ कब गठित की जानी चाहिये।

राजस्थान राज्य बनाम प्रकाश चंद मामला

♦ जहाँ तक किसी पीठ के गठन के अधिकार का प्रश्न है तो वर्ष 1997 के राजस्थान राज्य बनाम प्रकाश चंद (State of Rajasthan v. Prakash Chand) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि:

♦ उच्च न्यायालयों की प्रशासनिक नियंत्रण संबंधी शक्तियाँ केवल मुख्य न्यायाधीश में ही निहित हैं।
♦ मुख्य न्यायाधीश समकक्षों में प्रथम है और उसे अकेले ही अदालत के न्यायपीठों के गठन और मामले आवंटित करने का विशेष अधिकार है।

आवश्यक है गरिमा बहाल करना

♦ इसमें कोई शक नहीं है कि मुख्य न्यायाधीश पीठ गठित करने के लिये स्वतंत्र है। लेकिन कहा जा रहा है कि मेडिकल कॉलेज मान्यता मामले में कई ऐसे टेप हैं जिनमें शीर्ष न्यायपालिका से जुड़े व्यक्तियों का नाम आ सकता है।
♦ ऐसे में सुप्रीम कोर्ट को जस्टिस चेलामेश्वर की अध्यक्षता वाली पीठ का आदेश पलटने के बजाय गरिमा दिखाते हुए अदालत की कार्यवाही सुचारू रूप से चलने देनी चाहिये थी।
♦ दरअसल, मामला सुप्रीम कोर्ट में संस्थागत संकट का अवश्य है लेकिन यह कार्यपालिका के कारण नहीं, बल्कि स्वयं न्यायपालिका के कारण है।

संवाद

न्यायपालिका और कार्यपालिका का संघर्ष

♦ हाल ही में सुप्रीम कोर्ट में जो भी हुआ, दरअसल वह कोई नई बात नहीं है। जजों की नियुक्ति का मामला हो या एक-दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप का मामला, न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच टकराव होता आया है।
♦ संविधान निर्माताओं ने भारत को एक अनूठा और श्रेष्ठ संविधान दिया है, जहाँ शासन के तीनों अंगों- विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में इष्टतम सामंजस्य देखने को मिलता है।
♦ इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया गया है कि राज्य के सभी अंग एक-दूसरे के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण किये बगैर अपने-अपने क्षेत्रों में काम करें।
♦ न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच एक-दूसरे के लिये आपसी सम्मान होना चाहिये, साथ ही, इन सभी पर 'बाहरी दबाव' नहीं होने चाहिये।

केशवानंद भारती मामला

♦ वर्ष 1973 में केशवानंद भारती मामले में सुप्रीम कोर्ट के 13 जजों की अब तक की सबसे बड़ी संविधान पीठ ने अपने फैसले में स्पष्ट कर दिया था कि भारत में संसद नहीं बल्कि संविधान सर्वोच्च है।
♦ साथ ही, न्यायपालिका ने टकराव की स्थिति को खत्म करने के लिये संविधान के मौलिक ढाँचे के सिद्धांत को भी पारित कर दिया। इसमें कहा गया कि संसद ऐसा कोई संशोधन नहीं कर सकती है जो संविधान के मौलिक ढाँचे को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करता हो।
♦ न्यायिक पुनरावलोकन के अधिकार के तहत न्यायपालिका संसद द्वारा किये गए संशोधन को संविधान के मूल ढाँचे के आलोक में जाँच करने के लिये स्वतंत्र है।

कैसे होती हैं न्यायिक नियुक्तियाँ ?

♦ ध्यातव्य है कि संविधान के अनुच्छेद 124(2) के अनुसार सुप्रीम कोर्ट के सभी न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।
♦ इसके अनुसार राष्ट्रपति सुप्रीम कोर्ट के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे जजों से परामर्श करने के बाद, जिनसे वह परामर्श करना उचित समझे, सुप्रीम कोर्ट के जजों की नियुक्ति करेगा।
♦ परन्तु मुख्य न्यायाधीश से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से सदैव परामर्श किया जायेगा।

न्यायिक नियुक्तियों से संबंधित महत्त्वपूर्ण मामले

फर्स्ट जजेज़ मामला (first judges case)

♦ वर्ष 1981 का फर्स्ट जजेज़ मामला, जिसे एस.पी गुप्ता मामले के नाम से भी जाना जाता है, में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय से अगले 12 वर्षों के लिये न्यायिक नियुक्तियों के संदर्भ में न्यायपालिका के ऊपर कार्यपालिका को वरीयता दी गई।

सेकेण्ड जजेज़ मामला (second judges case)

♦ वर्ष 1993 के एडवोकेट्स-ऑन- रिकॉर्ड एसोशिएशन एवं अन्य बनाम भारत संघ (सेकेण्ड जजेज़ केस) के मामले में नौ जजों की पीठ ने यह व्यवस्था दी है कि:

♦ यदि उच्चतम न्यायालय का सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश पद धारण करने के लिये उपयुक्त है तो उसे भारत के मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया जाना चाहिये।
♦ साथ ही, उच्चतम न्यायालय के अन्य जजों की नियुक्ति की दशा में मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श का अर्थ सहमति होगा।

थर्ड जजेज़ मामला (third judges case)

♦ वर्ष 1998 में इन नियुक्तियों के सन्दर्भ में अनुच्छेद 143 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा मांगे गए परामर्श, जिसे थर्ड जजेज़ मामला भी कहते हैं में नौ जजों की पीठ ने राय व्यक्त करते हुए पाँच जजों से मिलकर बने एक कॉलेजियम की व्यवस्था दी है।
♦ इसमें भारत का मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीश शामिल होते हैं।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग: (national judicial appointment commission)

♦ गौरतलब है कि केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालयों में जजों की नियुक्ति और तबादले के लिये राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम बनाया था जिसे सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी गई थी।
♦ वर्ष 2015 में सुप्रीम कोर्ट ने इस अधिनियम को यह कहते हुए असंवैधानिक करार दिया था कि 'राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग' अपने वर्तमान स्वरूप में न्यायपालिका के कामकाज में एक हस्तक्षेप मात्र है।
♦ उल्लेखनीय है कि जजों की नियुक्ति करने वाले इस आयोग की अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायाधीश को करनी थी। इसके अलावा, सुप्रीम कोर्ट के दो वरिष्ठ न्यायाधीश, केन्द्रीय विधि मंत्री और दो जानी-मानी हस्तियाँ भी इस आयोग का हिस्सा थीं।
♦ आयोग में जानी-मानी दो हस्तियों का चयन तीन सदस्यीय समिति को करना था जिसमें प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश और लोक सभा में नेता विपक्ष या सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता शामिल थे।

मेमोरेंडम ऑफ प्रोसीजर (Memorandum of procedure)

♦ राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को सुप्रीम कोर्ट ने भले ही असंवैधानिक करार दे दिया, लेकिन साथ में 2015 में ही यह भी आदेश दिया था कि शीर्ष न्यायपालिका में नियुक्तियों के लिये एक मेमोरेंडम ऑफ प्रोसीजर (एमओपी) होना चाहिये।
♦ एमओपी द्वारा जजों की नियुक्तियों में पारदर्शिता सुनिश्चित होगी, क्योंकि:

♦ इसमें रिक्तियों का ब्यौरा एवं नियुक्तिओं का विवरण उच्च न्यायालय तथा केंद्र सरकार के न्याय मंत्रालय की वेबसाइट पर प्रकाशित करने की बात की गई है।
♦ कॉलेजियम के लिये एक सचिवालय के स्थापना की बात भी इसमें शामिल है।
♦ इसमें एक शिकायत निवारण प्रणाली की स्थापना करने की भी बात की गई है।

आगे की राह

उचित नहीं है न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच टकराव

♦ न्यायपालिका में संस्थागत संकट केवल न्यायपालिका या केवल कार्यपालिका के कारण नहीं है। दरअसल इस संकट के लिये दोनों की पक्ष ज़िम्मेदार हैं।
♦ सुप्रीम कोर्ट द्वारा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को असंवैधानिक करार दिया जाना जहाँ न्यायपालिका द्वारा उठाया गया एक प्रतिगामी कदम था, वहीं कार्यपालिका द्वारा एमओपी को अब तक लटकाए रखना उचित नहीं कहा जा सकता।

संवाद की संस्कृति को बढ़ावा

♦ ज़ाहिर सी बात है कि अपने काम में हस्तक्षेप किसी को पसंद नहीं आता। इस संदर्भ में सरकार का यह कहना सही है कि जिस तरह सरकार न्यायपालिका की भूमिका में नहीं आ सकती, ठीक उसी मर्यादा का पालन न्यायपालिका को भी कार्यपालिका के संदर्भ में करना चाहिये।
♦ हालाँकि, इस टकराव में जो एक सकारात्मक बात सामने आई है, वह ये है कि न्यायपालिका और कार्यपालिका दोनों अपना पक्ष रखने में कोई संकोच नहीं कर रहे। संवाद की यही प्रक्रिया लोकतांत्रिक समाज की पहचान है, लेकिन इसमें दोनों पक्षों को कटुता एवं श्रेष्ठता के भाव से मुक्त रहना चाहिये।

ज़रूरी नहीं प्रगाढ़ हो संबंध

♦ अगर न्यायपालिका–कार्यपालिका में संबंध प्रगाढ़ होंगे तो इसका लाभ सबको नहीं मिलेगा, बल्कि न्याय के लिये विश्वास का संकट खड़ा हो जाएगा।
♦ अतः बेहतर यही है कि कार्यपालिका, न्यायपालिका में टकराव की स्थिति बनने ही न दी जाए। इसी से लोकतांत्रिक व्यवस्था सुदृढ़ होगी।